मोतीमाला का बारहवाँ रत्न

# कलरव

संपादक

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

प्रकाशक

मोतीलाल बनारसीदास

संस्कृत हिन्दी पुस्तक विक्रेता

सैदमिट्ठा लाहौर

प्रकाशक—
सुन्दरलाल जैन
पंजाब संस्कृत पुस्तकालय,
सैदमिट्ठा, लाहौर।

प्रथम संस्करण १०००



मुद्रक—
शान्तिलाल जैन
मुम्बई संस्कृत प्रेस,
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर।

# कलरव सूची



# परिचय

## कविता की परिभाषा

कविता को मैं पहचानता हूँ। अपने जीवन के १६ वें वर्ष से मेरी उससे घनिष्ठ मित्रता है, किन्तु आज भी मैं उसकी परिभाषा नहीं लिख सकता। वह मेरे हृदय के इतने निकट है कि यह जानने की मुझे कभी इच्छा नहीं हुई कि वह है क्या? जिन आँखों ने या हृदयों ने इसे आलोचक या परीक्षक की दृष्टि से देखा है उन्होंने इसके रूप रंग को देखकर परिभाषाएँ लिखी हैं।

कोई इसे आत्मा की कला कहता है। कोई कहता है 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं', अर्थात् रसात्मक, रसमय वाक्य ही काव्य है। कोई कहता है 'कविता मनुष्य के हृदय की अनुभूति है।' कोई कहता है 'कविता कागज पर निकाल कर रख दिये जाने वाले व्यथित हृदय का ही दूसरा नाम है।' कोई कहता है 'जीवन के सत्यान्वेषण में जो स्फूर्ति, जो प्रेरणा छन्दोबद्ध हो जाय, वही कविता है।' पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने एक जगह कहा है, "कविता के सम्बन्ध में मेरी धारणा बराबर यही रही है कि वह एक ऐसी साधना है जिसके द्वारा शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह तथा उसके हृदय का प्रसार और परिष्कार

होता है। जब तक कोई अपनी पृथक् सत्ता की भावना को ऊपर किए जगत् के नाना रूपों और व्यापारों को अपने व्यक्तिगत योगक्षेम, हानि लाभ, सुख दुःख आदि से सम्बन्ध करके देखता रहता है, तब तक उसका हृदय बद्ध रहता है। इन रूपों और व्यापारों के सामने जब कभी वह अपनी पृथक् सत्ता की धारणा से छूट कर—अपने आपको बिल्कुल भूल कर—विशुद्ध अनुभूति मात्र रह जाता है, तब वह मुक्त हृदय हो जाता है। जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है—वही कविता है।

इन परिभाषाओं को पढ़कर कोई साहित्य के मेले में कविता की पहिचान करने निकले तो शायद धोखे में किसी और ही चीज को पकड़ ले। अनन्त गुण परिपूर्ण ब्रह्म की भाँति कविता के भी अनन्त रूप गुण हैं। जिसने उसे जिस रूप में देखा, उसने उसकी वही परिभाषा कर दी। "ब्रह्म क्या है ?" इस प्रश्न को मैंने उपनिषदों से भी पूछा है और उन्होंने जो कुछ उत्तर दिया है, उसे समझने का मैंने प्रयत्न किया है, किन्तु उस 'अरूप' के 'रूप' की तस्वीर आँखों में, हृदय में, या आत्मा में उतार लेना सम्भव नहीं हुआ है। 'वह है', 'वह मेरा है', 'मैं उसका हूँ', 'वह मुझमें है' और 'मैं उसमें हूँ', आदि बातों की अनुभूति अवश्य होती रहती है, परन्तु उसे सम्पूर्ण रूप से देखा नहीं जा सकता और देखा भी जावे तो उस झाँकी को सपूर्ण रूप से कागज पर नहीं उतारा जा सकता।

कविता की परिभाषा करते समय भी लेखक की यही स्थिति होती है।

जो यह कहते हैं कि 'व्यथित हृदय' की कागज़ पर जो तस्वीर खींची जाती है—वही कविता है। वे असत्य नहीं कहते, किन्तु उनका यह कथन 'अपूर्ण' है। यह बात अवश्य कही जा सकती है, व्यथित हृदय की वेदना का निवेदन करना कविता का एक कार्य हो सकता है—बल्कि है, किन्तु केवल यही कार्य है—ऐसा कहना एक अत्यन्त व्यापक वस्तु को अत्यन्त सीमित और संकुचित बना देना है।

साहित्यकारों का एक दल ऐसा भी है जो कहता है कि 'आनन्दानुभूति' को प्रकाशित करना ही कविता का ध्येय है—नहीं है तो होना चाहिए। मैं कहता हूँ, तुम भी उसे बाँध कर रखना चाहते हो और काव्य के निर्मल झरने को तालाब बनाना चाहते हो। उसे सहस्र धारों में, सहस्र दिशाओं में बहने दो। अपनी आँखों की दृष्टि को विस्तार दो। तुम्हें कविता के योगी की कुटी, भोगी के शयन गृह, राजा के स्वर्ण महल और किसान की झोंपड़ी में दर्शन होंगे। साहित्य शास्त्रियों ने उसकी जो परिभाषाएँ की हैं शायद उनकी मदद से तुम उसे न पहिचान सको, किन्तु यदि तुम में अनुभूति है तो फौरन कह उठोगे 'यही कविता है।'

जीवन के सत्यान्वेषण की जो स्फूर्ति और प्रेरणा वाणी बद्ध हो जाती है वही कविता है—यह बात गलत है—यह नहीं कहा जा सकता है। किन्तु 'सत्य' शब्द ही ऐसा है जिसके विषय में बड़ा मतभेद है। कोई कहता है सौन्दर्य ही सत्य है, कोई कहता है सत्य ही सौन्दर्य है। कोई कहता है सत्य और सौन्दर्य भिन्न वस्तुएं नहीं हैं। सत्यान्वेषण के

साथ सौन्दर्य साधना, सौन्दर्योपासना और सौन्दर्य प्रियता का समावेश न हो तो मैं कहूँगा कि सत्यान्वेषण की स्फूर्ति और प्रेरणा को वाणी बद्ध करने को मैं कविता का नाम देना पसद नहीं करूगा। वास्तव में बात यह है कि सत्य ही सौन्दर्य की चरम सीमा है। सत्य को प्राप्त करना सुन्दर को प्राप्त करना है। फिर भी मैं पाठकों को उस आकाश में लेजाना नहीं चाहता—जहाँ सौन्दर्य ही सत्य है और सत्य ही सौन्दर्य है। वे सत्य और सौन्दर्य को भिन्न रूपों में देखें तो कविता की परिभाषा इन शब्दों में करने का प्रयत्न किया जायगा—

जीवन के सत्यान्वेषण तथा सौन्दर्य-साधना में हृदय को जो आनद और वेदना की अनुभूति होती है, उसे जब वाणी बद्ध किया जाता है, वही कविता है।

इस जीवन शब्द का जिस व्यापक रूप में—जिसके अदर जगत् की प्राय सभी क्रियाएँ आ जाती हैं—मैंने प्रयोग किया है। यदि पाठक उसे उस रूप में न समझेंगे तो यह परिभाषा भ्रम फैलावेगी। इसलिए इस परिभाषा में थोड़ा सा परिवर्तन और होना चाहिए। 'विश्व जीवन के सत्यान्वेषण तथा सौंदर्य साधना में हृदय को जो आनद और वेदना की अनुभूति होती है, उसे जब वाणी बद्ध किया जाता है—वही कविता है।' इस परिभाषा को पडित रामचन्द्र शुक्ल की परिभाषा से मिलाया जाय तो मुझे उसमें और इसमें बहुत भेद नहीं जान पड़ता। उनकी परिभाषा का आशय है—'रस दशा में मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती है—वही कविता है।' इसमें समझने की चीज है—रस दशा।

प्रत्येक बाँसुरी अपने आप नहीं बज उठती। जब अनुभूति अपने मादक करों से किसी के हृदय को छू देती है, तो भाँति भाँति की रागिनियाँ, अनोखे अनोखे मनोहर स्वर बरबस पख फैलाकर उड़ने लगते हैं—यही कविता है। जिसके जीवन में अनुभूति ने कभी चोट नहीं पहुचाई, जिन के हृदय में प्रेम ने कभी प्यार नहीं किया, जिनको कोई 'प्रिय' नहीं, वह कभी कविता नहीं कर सकते—वे कवि नहीं बन सकते। यदि वह कुछ लिखेंगे तो वह शब्द शिल्प के सिवा और कुछ नहीं होगा। केवल बाह्य-रूप का वर्णन कविता नहीं। कविता अन्तरतम का, हृदय के गुप्ततम स्थान का, हृदय के छिपे से छिपे भावों का सच्चा वर्णन है। कविता की जननी है—अनुभूति। कविता है—हृदय के उन्माद का चित्र। ससार का कोई भी हृदय वेदना हीन नहीं है—ससार का कोई भी हृदय कविता शून्य नहीं है। अन्तर इतना ही है कि कोई-कोई अपनी अनुभूति को "स्वान्त सुखाय" अपने भावों का मजा बार बार लेने के लिए रग कर अमर बना देते हैं, कोई नीरव और मूक रहते हैं। जब वेदना किसी भी शर्त पर, किसी भी आश्वासन पर हृदय में रुकी नहीं रहना चाहती, तब तो बरबस मुँह से कुछ न कुछ निकल ही पड़ता है—यही कविता है। कविता का सब से बड़ा गुण यही है कि वह हृदय की सच्ची कहानी है। जो हृदय की सच्ची कहानी नहीं है—वह कविता नहीं।

## कवि कौन है

श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है "बाह्य जगत् हमारे मन के अदर प्रवेश करके एक दूसरा जगत् बन जाता है। उसमें केवल बाह्य-जगत् के

रग, आकृति तथा ध्वनि आदि ही नहीं होते, अपितु उसके साथ हमारा अच्छा बुरा लगना, हमारा भय विस्मय, हमारा सुख दु ख भी मिला रहता है—वह हमारी हृदय वृत्ति के विचित्ररस में नाना प्रकार से आभासित होता है।

" इसी हृदय वृत्ति के रस में जीर्ण करके हम बाह्य जगत् को विशेष रूप से अपना बना लेते हैं। जिस तरह जिनके उदर में पचाने वाला रस पर्याप्त मात्रा में नहीं होता, वे बाह्य खाद्य-पदार्थ को अच्छी तरह अपने शरीर की वस्तु नहीं बना सकते। इसी तरह जो हृदय वृत्ति के जातक रस का उपयोग ससार में पर्याप्त मात्रा में नहीं कर सकते वे बाह्य जगत् को अदर का जगत् अपना जगत् अर्थात् मानुषीय जगत् नहीं बना सकते। कुछ इस प्रकार के जड़ प्रकृति के मनुष्य हैं जिनके हृदयों में ससार के असन्त अल्प विषयों के प्रति उत्सुकता होती है—वे ससार में जन्म लेकर भी अधिकाश जगत् से वचित रहते हैं। उनके हृदय की खिड़कियाँ सख्या में कम और चौडाई में सकीर्ण होती हैं, इसलिए ससार के बीच में वे प्रवासी से हैं।"

"कुछ इस प्रकार के सौभाग्यवान मनुष्य भी हैं जिनका विस्मय, प्रेम और कल्पना सर्वत्र सजग रहती है—प्रकृति के कोने कोने से उनको निमन्त्रण मिलता है, ससार के नाना आदोलन उनकी चित्त वीणा को नाना रागिणियों में स्पदित कर देते हैं।"

ये ही सौभाग्यवान मनुष्य कवि हैं। जिस कवि में जितनी अधिक मात्रा जगत् को अपने मन के बीच हृदयवृत्ति के नाना रसों में, नाना

रगों में, नाना साँचों में ढालकर, मानव-मन के लिए अधिक सुगम और सुन्दर बना कर व्यक्त करने की शक्ति है, वह उतना ही बड़ा कवि है। कवि का ससार के ऊपर अधिकार तथा स्थायी रूप में व्यक्त करने की प्रतिभा—ये ही उसकी विशेषताएँ हैं। वह जगत् के आनन्द-वेदना, सुख दु ख और हास रुदन को अपना बनाता है—अपने अन्दर अनुभव करता है और अपनी अनुभूति को वाणी बद्ध करके मानव—मानव के हृदय को बाँटता रहता है। मानव हृदय चाहता है कि वह अपना अनुभव अनन्त काल के लिए विश्व के हृदय में लिख जाय। केवल कविता ही नहीं प्रत्येक कला के मूल में यही प्रेरणा कार्य कर रही है।

गुजराती भाषा के श्रेष्ठ साहित्यकार श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुशी ने अपनी रस-दर्शन पुस्तक में लिखा है—

"मनुष्य का स्वभाव सृष्टि की रचना के लिए तरसते हुए ब्रह्मा का सा है। व्यक्त करना उसका मौलिक लक्षण है। साधनाओं के द्वारा मनुष्य अपने अतर को व्यक्त करने का प्रयास करता रहता है। उसके अवसम हो जाने पर ही उसकी यह मथन दशा समाप्त होती है। व्यक्त करने की शक्ति और साधनों की भिन्नता के कारण यह विभिन्न कलाओं को जन्म देता है।"

यह सत्य है कि प्रत्येक कलाकार या कहिये रसकार, अखिल विश्व की आँखें, अनन्त-काल तक खाचते रहने के लिए अपनी तस्वीर अपनी रचनाओं में खींच जाता है। किन्तु, केवल अपने आपको ही व्यक्त करना इसका काम नहीं है—उसकी प्रवृत्ति नहीं है। वह अखिल विश्व के

सुख और दुःख में सौन्दर्य देखता है और उसे संसार को दिखाता है। विश्व के अनेक आवरणों के भीतर जो सौन्दर्य मूर्ति घूघट किए बैठी है—वह उसके घूघट को उठाकर उसकी एक झाँकी को भी दिखाता है। वह केवल अपने आपको ही नहीं, अपितु अखिल विश्व को व्यक्त करता है। वह केवल अपने हृदय को ही नहीं अमर करता, बल्कि जगत् के कण कण को जीवन देने का प्रयत्न करता है। वह देखता है कि राजा के हृदय में जो सुख दुःख, आकाक्षा अभिलाषा, आशा निराशाएँ हैं—वे ही एक गरीब किसान के हृदय में भी—और वे ही वृक्ष पर बैठे हुए एक विहग कुमार में भी विद्यमान हैं। जो लोग अपनी प्रियतमाओं के वियोग को अमर बनाने के लिए ताजमहल नहीं खड़ा कर सकते, उनके लिए कवि अपनी कविता का ताजमहल बना कर विश्व के हृदय पर स्थायी रूप से खड़ा कर जाता है। कवियों ने अनन्त काल से अनेक सुख दुखों को रूप देकर अमर किया है और करते रहेंगे। वे केवल स्वय ही अमर नहीं होना चाहते—प्रत्येक सुन्दर वस्तु को अमर हुआ देखना चाहते हैं। उनका सुन्दर जगत् के सर्व साधारण व्यक्तियों का 'सुन्दर' नहीं है—इसे पाठक न भूलें। वह सड़क पर पड़े हुए कोढ़ी में 'सुन्दर' को पाता है, वह रूप छवि-हीन भिखारिन के करुण गान में 'सुन्दर' को पाता है, वह चिता की ज्वाला में 'सुन्दर' को पाता है, वह भूकम्प, आँधी और सर्वनाश में भी 'सुन्दर' को पाता है। उसे आत्मा में स्थान देकर छन्दों में व्यक्त करता है।

## कविता की स्फूर्ति

पहले मैंने स्फूर्ति के स्थान पर निर्माण लिखने की इच्छा की थी,

किन्तु कविता के साथ निर्माण शब्द मुझे नहीं भाया। एक बार बाबू जयशंकर 'प्रसाद' ने मुझसे प्रश्न किया था, "क्या कविता भी कोई कला है?" आज तक मैं कविता को कला ही समझता आया हूँ और लिखता आया हूं। किन्तु विचार करने से मुझे अपनी धारणा पर सन्देह हो गया है। कविता में कला के बजाय रस खोजना चाहिए। जब कवि रस दशा को प्राप्त होता है, तब कविता अपने आप प्रवाहित होती है। उसमें प्रयास इतना नहीं होता जितनी स्फूर्ति (intitution)।

रोमारोलां ने, कविता का निर्माण कैसे होता है, इस विषय में लिखा है—

"वज्र जब और जहां चाहता है गिरता है किन्तु कुछ ऐसे शिखर होते हैं जो उसे अपनी ओर आकर्षित करते हैं। कुछ जगह कुछ आत्माएं तूफान पैदा करती हैं। वे उसका निर्माण करती हैं। अथवा क्षितिज के प्रत्येक बिन्दु से उसे अपनी ओर खींचती हैं। वर्ष के कुछ महीनों की तरह जीवन के कुछ समय विद्युद्वेग से इतने अधिक भरे रहते हैं कि उनमें भड़कने का शब्द प्राय हुआ करता है।

इसके स्वागत में मनुष्य की सारी स्थिति हिल उठती है। कभी कभी तो यह तूफान कई दिनों तक चलता रहता है। आकाश जलते हुए बादलों से घिर जाता है। वायु की गति बन्द हो जाती है। स्थिर वायु मानों मिट्टी पर गरम होकर खौलना चाहती है, पृथ्वी शान्त निर्जीव हो जाती है, उससे कोई ध्वनि नहीं उठती। मस्तिष्क में, ज्वर आने की जैसी पीड़ा होने लगती है। सारी पृथ्वी इन संचित शक्तियों के भड़क

उठने की प्रतीक्षा करती है। शरीर के भीतर जैसे प्रलय होने लगता, नाड़ी जाल पत्तों की भाँति काप उठता है। फिर अकस्मात् सब शान्त हो जाता है। आकाश वज्र सचय करता जाता है।

"जब तक इसकी प्रतीक्षा करनी पड़ती है, मनुष्य के भीतर बड़ी अशान्ति रहती है। कलाकार अपनी उसी बेचैनी में अपने भीतर उस अग्नि का अनुभव करता है, जो ससार को जला कर राख करता है। भट्टी मे शराब की तरह आत्मा खौलने लगती है। उसमें जीवन और मरण के सहस्रों कीटाणु अपने अपने काम में लग जाते हैं। इस से क्या उत्पन्न होगा आत्मा नहीं जानती। गर्भवती स्त्री की भाँति चुपचाप वह अपनी ओर देखती है और उत्सुकता से अपने गर्भ के भीतरी सचार का निरीक्षण करती है और सोचती है—"मुझसे क्या उत्पन्न होगा ?"

"कभी कभी इस प्रकार की बेचैनी व्यर्थ होती है। तूफ़ान भड़कता नहीं धीरे से निकल जाता है। किन्तु कलाकार जागता है—थका हुआ और भग्न हृदय। वह कुछ देर के लिए और ठहर जाता है। उसे तो भड़कना ही है। यदि आज नहीं तो कल। जितनी ही देर तक वह रुका रहता है। उतनी ही भयकर उसकी धड़कन होती है।

"अब वह आता है। आत्मा के सभी भागों से गरजते हुए बादल आ जाते हैं। घने घने, नीले और काले। रह रह कर बिजली चमकती है आत्मा का क्षितिज एक बार प्रकाशित होता है, किन्तु, फिर वह प्रकाश निकल जाता है। विक्षिप्तता की एक घड़ी। चेतना की उस राशि में सारा ससार कापने लगता है। आत्मा यातना में पड़ जाती है। जीवन की अब

और इच्छा नहीं होती। अब अन्त, बस अन्त, केवल यही एक इच्छा ।

" अकस्मात् प्रकाश हो जाता है। कलाकार आनन्द में उन्मत्त हो उठता है। यह आनन्द रचना का आनन्द है। आनन्द! उत्तेजित आनन्द! सूर्य, जो हो और जो होने को है, सब प्रकाशित कर देता है। रचना का दैवी आनन्द! रचना से बढ़कर अन्य आनन्द नहीं। जो रचना करते हैं, उनके अतिरिक्त दूसरे जीवित प्राणी नहीं। शेष सभी जीवन से अपरिचित, पृथ्वी पर भटकने वाली छाया हैं। जीवन के सभी आनन्द वास्तव में रचना के आनन्द हैं। शरीर के द्वारा निर्माण करना, जीवन के कारागार से मुक्त होना है। यह जीवन की आँधी पर चढ़ना है यह वही होना है "जो सदा है।" रचना करना मृत्यु के ऊपर विजय प्राप्त करना है।

" वे स्त्री और पुरुष भाग्य-हीन हैं, जो आते हैं और चले जाते हैं, किन्तु अपना कोई भी ऐसा स्मृतिचिन्ह नहीं छोड़ जाते जिससे कि फिर कभी जीवन की लपट निकल सके। वह आत्मा भाग्य हीन है, जो अपने फलवती होने का अनुभव न करके भी अपने को जीवन और प्रेम में महान समझती है। ऐसे जीव पर ससार सम्मान का बोझ भले ही लाद दे, किन्तु वास्तव में वह इस भाँति मृतक की शोभा बढ़ाना चाहता है।"

रचना करने के लिए कवि के हृदय में जो यह बेचैनी होती है—इसे ही रस दशा कहा जा सकता है। यही अनुभूति का आवेग है।

प्रयास और अभ्यास से काव्य रचना में सौन्दर्य आता है, यह बात भी माननी ही पड़ेगी और जहाँ मनुष्य का प्रयत्न काम कर रहा है वहाँ

कला नहीं है, इस बात से भी सोलहों आना इनकार करना असम्भव हो जाता है। फिर भी जो कवि है, वे जानते हैं कि काव्य-रचना किसी शैली, किसी शास्त्र और किसी परिपाटी का बंधन स्वीकार नहीं करती। स्वयं कवि अपनी इच्छा के अनुकूल, अपनी मर्जी के विषय पर रचना करने में सफल नहीं होता। वह क्या लिखने जा रहा है, इस बात की उसे स्वयं कल्पना नहीं होती। जो कुछ लिखने बैठा था उससे भिन्न वस्तु ही वह लिख बैठता है। किन्तु वह निरर्थक प्रलाप नहीं होता। उसमें अर्थ भी होता है, सौन्दर्य भी और रस भी।

मैंने एक कविता में लिखा है—

चित्रित करने लगता हूँ जब ऊषा का अनुराग अनूप।
जाने कैसे मुग्ध लेखनी लिख देती सन्ध्या का रूप।
कमल बनाता हूँ सरवर में बन जाती कुमुदिनि अनजान।
रवि की रश्मि नहीं खिंचती है खिंचजाती शशि की मुसकान।

पूर्व दिशा का स्वर्ण भूल से
पश्चिम में भर जाता है।
जाने कौन बसा आँखों में
जो तस्वीर खिंचाता है।

कवि कागज पर जो तस्वीर खींचने बैठता है कभी कभी उससे सर्वथा भिन्न वस्तु ही खिंच जाती है।

इसी प्रकार श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने अपनी 'कुछ का कुछ' कविता में लिखा है।

घर घर गाने चली भक्ति 'जय'!
गिरि की दृढ़ता का गुण-गान,
उसी रात, उर चीर, प्रेम की
गंगा फूट पड़ी गतिमान,
        गायक झुँझला जाता है,
        हाय, युगों के संयत! क्यों तू
        पल भर में बह जाता है!

लिखा महानद महासिंधु के
महामिलन का ज्यों ही गान,
टेढ़ी-मेढ़ी विकल पंक्तियाँ
विरह गीत बन गईं अजान।
        कवि कुंठित हो जाता है!
        ऐ आनन्द, वेदना में क्यों
        तू लय होता जाता है!

अंकित करने चली तूलिका
ज्यों ही विस्तृत नील गगन,
किसी नयन का लघु तारा
खिंच गया चित्र पट पर तत्क्षण;
        चित्रकार चकराता है।
        ऐ असीम, क्यों तू सीमा में
        प्रतिपल बँधता जाता है?

# कविता का विषय

कविता की सृष्टि किस प्रकार होती है—यह बताते हुए मैंने जो यह बात कही है कि हृदय में एक विशेष बेचैनी—विशेष स्फूर्ति होती है और कवि अनायास ही कुछ लिख डालता है, इससे पाठक शायद यह समझ सकते हैं कि कविता मतवालेपन की बहक होती है। बहक में न कोई विषय हो सकता है न कोई उसका अर्थ। किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। कवि के हृदय में जो प्रसव-वेदना होती है, उसके स्पष्ट कारण होते हैं—नियम होते हैं। उसकी बहक, यद्यपि ससार की वाणी से भिन्न है, फिर भी वह निरर्थक नहीं है।

युग युग के सस्कार, प्राण प्राण के सुख दु ख, जड़ प्रकृति की गतियाँ अर्थात् ससार का कण-कण अपनी बातें कवि के हृदय में लिखता जाता है। वे ही तो कविता के बीज हैं। पानी पाकर वे कविता के रूप में प्रस्फुटित हो उठते हैं। इन सब में एक क्रम होता है, एक गति होती है और एक नियम होता है। जो कवि की बहक को पागलों की बहक से पृथक् करती है।

ज्ञान कविता का विषय नहीं है। 'भाव' ही कविता का विषय होता है। प्रेम, उत्साह, आश्चर्य, करुणा, आनन्द व्यथा, शांति अशांति आदि भावनाओं की व्यञ्जना के लिये ही कवि हृदय आदि-काल से गाते आए हैं। किसी ज्ञान का प्रसार करने के लिए नहीं।

रवि बाबू ने लिखा है "जो ज्ञान की बात है—प्रचार हो जाने पर उसका उद्देश्य सफल होकर समाप्त हो जाता है। • • किन्तु हृदय

की बात प्रचार के द्वारा पुरानी नहीं होती। ज्ञान की बात को एक बार जान लेने के पश्चात् फिर जानने की आवश्यकता नहीं रह जाती। भावों की बात का बारम्बार अनुभव करके भी अति बोध नहीं होता।

यदि मनुष्य अपनी किसी वस्तु को चिरकाल-पर्यन्त मनुष्यों के पास उज्ज्वल तथा नवीन भावों में अमर करके रखना चाहता है, तो उसे भावों की बात का ही आश्रय लेना पड़ता है।"

इसी कारण यह कहना पड़ता है कि कविता का प्रधान अवलम्बन ज्ञान का विषय नहीं है, भावों का विषय है।

पाठक कह सकते हैं कि यह तो कविता को सीमित कर देना हुआ। एक युग था जब कि वेदों का ज्ञान भी कविता में कहा गया था। अंकगणित व्याकरण आदि शास्त्रों के सूत्र भी कविता में लिखे गए थे—और आज भी यह तमाशा देखने में आता है कि कुछ कवि पुंगव भूगोल तक को कविता में लिखने का उद्योग करते हैं।

वेद को मैंने नहीं पढ़ा। उसके कुछ मन्त्रों का अनुवाद देखा है और उन्हें देखकर मैं कह सकता हूँ कि वे मनुष्य को भावना-विह्वल पहले करते हैं–ज्ञान पीछे देते हैं। जिन मन्त्रों पर ज्ञान का बोझ लादा गया है, उन्हें बार बार पढ़ने की इच्छा नहीं होती। 'ज्ञान का प्रचार किया जाता है और भाव का संचार'। गुनी जनों के इस कथन में पर्याप्त सचाई है। जो ज्ञान भावना के प्राणों से अभिभूत होकर विश्व के हृदयों में अभिसार करता है, वह अमर हो जाता है। इसीलिए वेदों और उपनिषदों का ज्ञान अमर है। इससे उस ज्ञान की महत्ता—उसका गौरव कम भले ही हो, पर

वह मानव मानव के प्राणों में वास कर गया है ।

जो लोग भूगोल जैसी चीज को छन्दों में बाँध कर उसे भी कविता कहना चाहते हैं, उनके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता । पद्य रचना करना एक बात है और कविता करना दूसरी । पद्य-रचना का विषय कुछ भी हो सकता है, किन्तु कविता का विषय तो मानव प्राणों में भावों का सचार करना हो सकता है ।

कवियों ने राम, कृष्ण आदि महा पुरुषों, झाँसीवाली रानी, पद्मिनी, शिवाजी और महाराणा प्रताप आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों को लेकर कविताएँ लिखी हैं—वे भी किसी प्रकार का ज्ञान प्रचार करने के उद्देश्य से नहीं बल्कि भक्ति, प्रेम, देश प्रेम, राष्ट्रीयता आदि भावनाओं का हृदय हृदय में सचार करने के लिए । कवि जिस प्रकार एक फूल को देख कर प्रभावित होता है—उसे सुन्दर और प्रिय समझकर उस पर आसक्त होता है, उसकी छवि के गीत गाता है । उसी प्रकार महान आत्माओं के सौन्दर्य से भी वह प्रभावित होता है । उनके विषय में वह जो अनुभव करता है—वही अनुभव वह दूसरों को भी कराना चाहता है।

## हिंदी कविता

(कविता के सम्बन्ध में इतना लिख देने के बाद मैं पाठकों का ध्यान अपनी इस पुस्तक की ओर खींचना चाहता हूँ।) वास्तव में यह आश्चर्य की ही बात है कि प्रत्येक भाषा का इतिहास एक ही बात कहता है कि गद्य के पहले पद्य का विकास हुआ । हिन्दी में भी प्राचीनतम पुस्तकें—खुमान रासो ( दलपति विजय कवि कृत ), बीसलदेव रासो ( नरपति नाल

कवि कृत ), पृथ्वीराज रासो ( चन्द कवि कृत ), जयचन्द प्रकाश, आल्हा ( जगनिक कवि कृत ), विजयपाल ( नलसिंह भट्ट कवि कृत ) आदि सभी पद्य में है। इन रचनाओं को देखकर कहा जा सकता है कि हिन्दी का कविता साहित्य प्रारम्भ से ही काफी उन्नत रहा है।

यह बात सत्य है कि साहित्य में युग की छाप रहती है अथवा यों कहिए कि साहित्य युग की तस्वीर है। इतिहास घटनाओं का लेखा दे सकता है, वह जमाने का शरीर आपको दिखा सकता है, किन्तु काव्य में आप जमाने का हृदय पावेंगे। हमारे उन पूर्वजों को, जिन्हें संसार से विदा हुए शताब्दियाँ बीत गईं, आज भी हम अपने बीच में बैठा पाते हैं। हम उनके शरीर को चाहे न देख पा रहे हों, किन्तु उनका हृदय आज भी हम से बातें कर रहा है और हम उनकी भावनाओं को समझ रहे हैं—यह भी जान रहे हैं कि किस युग में हमारा देश वीर था, किस युग में यह भक्ति की धारा में बह गया, किस युग में वह विलास का बंदी हो गया, किस युग में यह विलास के बंधन तोड़ने को आकुल हो उठा और किस युग में उसने अपने अन्दर विश्व की आत्मा को पाया।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि हमारी हिन्दी कविता की ये ही मुख्य धाराएँ रही हैं—

( १ ) वीरता प्रदर्शक काव्य धारा।
( २ ) भक्ति-रस पूर्ण काव्य धारा।
( ३ ) शृंगार रस पूर्ण काव्य-धारा।
( ४ ) राष्ट्रीय काव्य धारा।

( ५ ) छायावादी काव्य धारा।

( ६ ) हृदयवादी काव्य धारा।

प्रथम तीन प्रकार की रचनाएं प्राचीन युग में ही होती रही हैं। उस युग का परिचय देना मेरी इस पुस्तक का विषय नहीं है। केवल इसी युग की रचनाओं से परिचय कराने के लिए मैंने यह संग्रह पाठकों के सम्मुख रखा है।

प्राचीन और नूतन के मुकाबले में रख कर किसी एक का अपमान करना मैं नहीं चाहता। साहित्य में प्रत्येक रस की और सभी प्रकार की भावनाओं का समावेश होना चाहिए। वीर गाथाओं के रचयिता चंदवरदाई से लेकर भूषण तक ने हमारे राष्ट्र के प्राणों को बल देने का एक अमर खजाना भर रखा है। हमें दु ख केवल इस बात का है कि उसकी भाषा बहुत पीछे रह गई है और उसकी आत्मा के पास अब हमें पहुँचना कठिन हो गया है। किन्तु यह सम्पत्ति खो देने के योग्य नहीं है। उनकी भावनाओं की आज भी राष्ट्र को आवश्यकता है। हमारी सोई हुई वीरता फिर जाग पड़े—यह वाछनीय है।

इसी प्रकार वे रचनाएँ जिनमें भक्ति ने प्राणों की—आत्माओं की बात कही है युग युग तक राष्ट्र-हृदयों में लिखी रहेंगी। वीर-गाथा काल की रचनाए एक विशेष देश की घटनाओं से सम्बन्ध रखने के कारण सभव है, ससार के अन्य भागों में आदर न पा सकें, किन्तु भक्ति काल की रचनाएँ तो सारे ससार की सम्पत्ति है।

यह तुलसी, कबीर और मीरा आदि भक्ति रस में दीवाने कवि आज

भी विश्व को निमन्त्रण दे रहे हैं कि जो सुधा तुम्हें चाहिए हमारे पास है। आओ और पीकर आनन्द से नाच उठो।

सच पूछा जाय तो आजकल छायावाद की जो गंगा उतरी है वह भक्ति के महादेव की जटाओं से ही प्रवाहित हुई है।

केवल एक ही धारा ऐसी है जिसके विषय में हमें शिकायत है और वह है शृंगार रस धारा। शृंगार के बिना साहित्य नीरस है यह सर्वथा सत्य है, किन्तु शृंगार का अर्थ नग्नता नहीं है। भक्ति रस की कविताएँ लिखने वाले सूर और मीरा ने, शुद्ध रहस्यवादी रचनायें लिखने वाले कबीर, दादू, नानक आदि ने भी शृंगार रस को त्याज्य नहीं समझा है, किन्तु उस शृंगार में और इस शृंगार में बड़ा अन्तर है। वह शृंगार रस था— विश्वात्मा के प्रति विषय भावना हीन आत्मिक सम्बन्ध आत्मा का आत्मा से ग्रंथि बन्धन और यह शृंगार-रस था शरीर का शरीर से मिलन। इस प्रकार का मिलन उच्चकोटि के साहित्य में कोई उच्च स्थान नहीं पा सकता।

इस युग के प्रतिनिधि कवि श्रीयुत सुमित्रानन्दन पंत ने अपनी पुस्तक 'पल्लव' की भूमिका में इन कवियों के विषय में जो कुछ लिखा है उसका कुछ अंश मैं यहाँ दिए बिना नहीं रह सकता। वह लिखते हैं—

"अधिकांश भक्त कवियों का समग्र जीवन मथुरा से गोकुल ही जाने में समाप्त हो गया। बीच में उन्हीं की संकीर्णता की यमुना पड़ गई। कुछ किनारे पर रहे, कुछ उसी में बह गए, बड़े परिश्रम से कोई पार भी गये तो ब्रज से द्वारका तक पहुँच सके। संसार की सारी परिधि यहीं समाप्त हो गई। रूप के उस श्याम वरण के भीतर झाँक न सके। अनन्त

नीलाकाश को एक छोटे से तालाब के प्रतिबिम्ब में बाँधने के प्रयत्न में स्वय बँध गए। सहस्र दादुर उसमें छिपकर टर्राने लगे। समस्त वायु मण्डल घायल हो गया। यमुना की नीली लहर काली पड़ गई। भक्ति के स्वर में भारत की जन्मजन्मान्तर की सुप्त मूक आसक्ति बाधा विहीन बौछारों में बरसा दी। ईश्वरानुराग की बाँसुरी अन्ध बिलों में छिपे हुए वासना के विषधरों को छेड़ छेड़ कर नचाने लगी। श्याम तथा राधा की खोज में, सौ सौ यत्नों से लपेटी हुई समस्त आबाल वृद्धाएँ नग्न प्राय कर भारतीय गृहस्थ के बद द्वारों से बाहर निकाल दीं। उनके कभी इधर-उधर न भटकने वाले सुकुमार पाँव ससार के सारे विषपूर्ण काँटों से जर्जरित कर दिए।

" भाषा का ऐसा शुक्र प्रयोग, राग और छंदों की ऐसी एक स्वर रिमझिम, उपमा तथा उत्प्रेक्षाओं की ऐसी दादुरावृत्ति, अनुप्रास एव तुकों की ऐसी अश्रान्त उपल वृष्टि क्या ससार के और किसी साहित्य में मिल सकती है। इस तीन फुट के नख शिख के ससार से बाहर ये कवि पुगव नहीं जा सके। हास्य, अद्भुत, भयानक आदि रसों के तो लेखनी को - कभी कभी कुल्ले मात्र करा दिये हैं।"

बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिंदी कविता को नवीन दिशा की ओर प्रवाहित करने में बहुत परिश्रम किया है। उनके काल में राष्ट्र ने नव चेतन पाया है और वह नव चेतन उनकी रचनाओं में आज तक जीवित है। प्राचीन परिपाटियों की जजीरों को तोड़ कर भारतेन्दु जी ने हिंदी-कविता को बधन मुक्त किया है। उसको विश्व की अन्य भाषाओं के साथ पैर

रखने के लिए उसके मार्ग के काटे चुनने का कार्य इस काल के अन्य कवि देवीप्रसाद पूर्ण, श्रीधर पाठक, सत्यनारायण कविरत्न, अयोध्यासिंह उपाध्याय, महावीरप्रसाद द्विवेदी आदि ने किया है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री जयशंकर प्रसाद, श्री माखनलाल चतुर्वेदी और सुमित्रानंद पंत ने—जो इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं—हिंदी कविता के जरा जर्जरित प्राणों में नवजीवन संचार किया है—उसे यौवन प्रदान किया है। भाषा को राष्ट्र भाषा का रूप प्रदान किया है। इतना ही नहीं राष्ट्र का विश्व के साथ और आत्मा का परमात्मा के साथ ग्रंथि बंधन इस युग के कवियों ने किया है।

खड़ी बोली के विषय में अपनी ओर से एक शब्द भी न कह कर पंतजी के निम्न लिखित वाक्य उद्धृत कर देना मैं उचित समझता हूँ।

'खड़ी बोली में चाहे व्रजभाषा की श्रेष्ठतम इमारतों की होड़ जोड़ की अभी कोई इमारत भले ही न हो, उसके मंदिरों में वैसी बेल बूटेदार मीनाकारी तथा पच्चीकारी, उसकी गुहाओं में अजन्ता का सा अद्भुत अध्यवसाय, चमत्कार, विविध वर्णों की मैत्री तथा अपूर्व हस्तकौशल, उसकी छोटी मोटी, इस पत्थर के काल की मूर्तियों में वह सूक्ष्मता सज धज, निपुणता, अथवा परिपूर्णता न मिले, उसमें अभी मानस के से पवित्र घाटों का अभाव हो, पर उसके राज पथों में जो विस्तार और व्यापकता, भिन्न भिन्न स्थानों को आने जाने वाले यात्रियों के लिए जो रथ तथा यानों के सुप्रबंध की ओर चेष्टा, उसकी हाट बाट विपणियों में जो वस्तु वैचित्र्य का आयोजन है, देश प्रदेशों के उपभोग्य पदार्थों के विनिमय तथा क्रय-

विक्रय को सुलभ करने का जो प्रयत्न किया जा रहा है, उसके पार्कों में जो नवीनता, आधुनिकता, विपुलता, पुष्पों की भिन्न भिन्न ढांचों में खिली वर्तुलाकार, आयताकार, मीनाकार, वर्गाकार रंग बिरंगी क्यारियाँ, सामयिक रुचि की कैंची से कटी छँटी जो विविध स्वरूपों की झाड़ियाँ, गुल्म, वृक्षावलियाँ, नव नव आकार प्रकारों में विकसित तथा सिंचित कुञ्ज, लता भवन और बेलि वितान अभी हैं वे असतोषप्रद नहीं। उसमें नये हाथों का प्रयत्न, जीवित सासों का स्पंदन, आधुनिक इच्छाओं के अंकुर, वर्तमान के पद चिह्न, भूत की चेतावनी, भविष्य की आशा, अथच नवीन युग की नवीन सृष्टि का समावेश है। उसमें नये कटाक्ष, नए रोमाच, नए स्वप्न, नया हास, नया रुदन, नया हृत्कंपन, नवीन वसंत, नवीन कोकिलाओं का गान है।

" इन बीस-पच्चीस बरसों के छोटे से वित्ते में खड़ी बोली की कविता के मूल देश के हृदय में कितने चले गए, उसकी शाखा प्रशाखाएँ चारों ओर फैलकर हमारी खिड़कियों से किस तरह भीतर भीतर झाँकने लगीं, किस तरह वायु के झोंकों के साथ उसके राशि राशि पुष्पों की अर्धस्फुट-सौरभ हमारे कमरों में समाने, सासों के साथ हृदय में प्रवेश करने लगी, उसकी सघन हरीतिमा के नीड़ों में छिपे कितने पक्षी, बाल कोकिला तरुण-पपीहे, तथा प्रौढ शुक, सहस्र स्वरों में चहचहाने तथा सुधा वर्षण करने लगे। उसके पत्र हिल हिल कर किस तरह हमारी ओर संकेत करने लगे। उसकी अस्फुट मर्मर में हमें अपनी विश्व व्यापी उत्थान पतन, देश व्यापी आशा निराशा, घटघट व्यापी हर्ष विषाद की, वर्तमान के मनोवेगों,

भविष्य की प्रवृत्तियों की कैसी सहज प्रतिध्वनि मिलने लगी है, यह दिवस की ज्योति से भी स्पष्ट है । इसके लिए दर्पण की आवश्यकता नहीं।"

प्राणी मात्र के हृदयों में एक ही वेदना राज्य कर रही है, एक ही सौन्दर्य शासन कर रहा है, एक ही रूप पागल बना रहा है, एक ही प्रेम सब को नाच नचा रहा है। सब के अरमान एक ही ओर पख फैलाए उड़े जाते हैं। विश्व साहित्य वही है, जिसमें जाति पाँति की सीमा के पार भेद भावों से दूर हृदय की करुण कहानी गूंथी जाती है। उस पर सारे ससार का समान अधिकार है, सारा ससार उससे समान प्यार करता है। रवीन्द्र, शैक्सपियर, शैली, कीटस, कालीदास आदि ने मानव हृदयों का जो सुन्दर और स्वाभाविक चित्र खींचा है उससे आज वे ससार के लाडले हो गए हैं। ससार-भर उनकी कृतियों को पढ़ता है और आत्मीयता का अनुभव करता है। हमारी हिन्दी के ब्रज भाषा के युग में भी सूर, तुलसी, कबीर, मीरा, तथा अन्य भक्त और प्रेमी कवि अवश्य ऐसे ही हैं जिन्होंने मानव हृदय की सच्ची वेदना, दु ख सुख, आनन्द-उल्लाह सयोग वियोग का वर्णन किया है। वे वास्तव में विश्व कवि थे। परन्तु दूसरे पदमाकर, मतिराम, देव आदि सैकड़ों शृंगारी कवि मथुरा वृन्दावन के बाहर अपना ससार नहीं बना सके। शरीर नाशवान है, आत्मा अमर है। जिसने आत्मा का सगीत सुनाया वे अमर कवि हैं, जिसने शरीर के वर्णन में ही अपना जीवन बिता दिया वे अपनी मृत्यु के पहले मुर्दे हो चुके हैं।

## छायावाद

हिंदी भाषा के प्राय सभी नवीन कवि अपने आप को छायावादी कवि कहने में अपना गौरव समझते हैं, और समालोचक समुदाय ने भी उन्हें छायावादी की संज्ञा दे रखी है। अपने आप को छायावादी कहने वाले कवियों में से अनेक ऐसे हैं जिन्हें इस शब्द का अर्थ, उत्पत्ति एवं इतिहास का कुछ भी पता नहीं और वे यह भी नहीं जानते कि उनकी रचनाओं में छायावाद कहा से प्रारंभ होता है।

ईसा की बारहवीं शताब्दी में संत बर्नार्ड ( St Bernard ) ने कहा था—" जब साधक के हृदय-देश में ईश्वर की भेजी हुई ज्योति की किरन झराक की तरह क्षणमात्र के लिए आ जाती है तब उस परम तेज की चकाचौंध कम करने के लिए अथवा उसके द्वारा प्रकाशित ज्ञान को दूसरों तक कुछ पहुचाने के योग्य बनाने के लिए उस प्रेषित ज्ञान या तथ्य को व्यंजित करने के उपयुक्त पार्थिक जगत का कुछ अनूठा-विधान सामने आ जाता है। छलावे की तरह भासित हुए उस रूपक को "छाया दृश्य" ( Phantasmata ) कहते हैं। " कविताओं में इन्हीं " छाया-दृश्यों " के वर्णन ने छायावाद को जन्म दिया है।

छायावाद एक स्थिति है जिसमें हृदय को अनंत के साथ अपने संबंध की अनुभूति होती है। छायावाद प्रेमी, प्रेम, अनंत और सौंदर्य इन चारों चीजों में संबंध स्थापित करता है। कोई कोई छायावादी कवि छायावाद को हृदय की उस रहस्यमय प्रेरणा का नाम बतलाते हैं जो सीमित वस्तुओं के घूघट में असीम का मुख देखने को अकस्मात व्याकुल

हो जाया करती है मैं कहता हू। कवि की आत्मा अनत से जो प्रेम करती है वही उसे सीमा में असीम और रूप में अरूप को देखने का पागलपन प्रदान करती है।

जिस वस्तु को कभी पाकर खो दिया है, जिसे खोने का बहुत कलक है, उसको खोजने के लिए हम ससार का कण कण खोज डालने के लिए आकुल हो उठते हैं। प्रेम का उन्माद ही हम को प्रत्येक वस्तु में 'प्रियतम' के दर्शन कराता है। इसीलिए मैं कहता हू प्रत्येक अनत का प्रेमी कवि छायावादी कवि है। प्रेम का पागलपन ही उसे सारी वस्तुओं में अपने 'प्यारे' का आभास कराता है।

ज्यों-ज्यों विरह निशा बढ़ती है
बढ़ता मेरा प्यार अपार।
जल थल, अनिल अनल, कल रव
सब में मिलते हो प्राणाधार।
पत्थर के टुकड़ों में भी तो
मिलता प्रियतम का आभास,
उठा हृदय पर रख लेता हू
करता रहे जगत उपहास।

पत्थर के टुकड़ों में 'प्रियतम' का आभास देने वाला 'प्रेम' के सिवा और है ही कौन ! छायावादी यदि असीम को प्यार करने वाला है तो उसे ससीम के घूघट में असीम का मुख देखने की अभिलाषा सिवा प्रेम के कौन उत्पन्न कर सकता है।

मैंने एक स्थान पर लिखा है।

सीमा का घूंघट कर आती, अयि असीम, ज्यों घन में चदा।
अखिल विश्व का मन उलझाता यह गोपन का गोरखधधा।
तिल की ओट, प्राण, तुम अपनी क्यों विराटता ढक लेती हो।
काया के कारागृह की तुम आँखें बदिनि कर देती हो।

प्रिये, रूप की धूप छाँह का
मत अरूप पर परदा डालो।
कहो, मूर्ति मुझ में अरूप है
आँखें हों तो दर्शन पा लो।

जो मूर्ति में अमूर्त को देखता है उसका दृष्टि कोण ही बदल जाता है। यह जगत् की किसी वस्तु का वर्णन करेगा, किसी भी विषय पर लिखेगा, उसका प्रियतम, उसका अनत उसका साथ नहीं छोड़ेगा।

यह आवश्यक नहीं है कि जो अनत का प्रेमी है उसकी आत्मा का सयोग अनत की आत्मा से हो ही गया है। वियोग भी सभव है। प्रियतम के वियोग में रोने वाला भी उतना ही छायावादी है, जितना कि उसका साक्षात् करके आनदित होने वाला।

## छायावाद में अस्पष्टता

वर्तमान हिंदी छायावादी रचनाओं में अनेक ऐसी होती हैं जिन्हें पाठक नहीं समझ पाते। बहुत से कवि इस अस्पष्टता को भी एक गुण समझते हैं, किंतु, मैं इस अस्पष्टता को कवि की असमर्थता—उसमें अनुभूति की कमी समझता हू। जिन्हें अपने 'प्रियतम' का रूप स्पष्ट

खिला देती है । कल्पना भी सत्य ही है। जिसने कभी इन्द्रधनुष को देखा न हो, वह इन्द्रधनुष के वर्णन को कल्पना कह सकता है। इसी प्रकार कवियों के वर्णन को कल्पना इसलिए कहते हैं कि लोगों की दृष्टि बहुत थोड़ी दूर तक जा पाती है। कवि के उर में जो सौरभ छिपा हुआ है वह कवि की आँखों से दूर नहीं लेकिन संसार की आँखों से दूर है। मृत्यु के परदे में जो यौवन छिपा रहता है वह संसार की आँखों से दूर है, कवि उसे सहज ही समझ जाता है । निशा की चादर से जो विहान ढका हुआ है, वह संसार की आँखों को दिखाई नहीं देता लेकिन कवि उसे स्पष्ट देखता है । क्षितिज के पार संसार की आँखें नहीं जातीं, कवि उस लोक को कल्पना की आँखों से देख लेता है । शून्य के हृदय में जो जो छिपा हुआ है, वह कवि ही जान लेता है, संसार नहीं जान पाता। कवि जो कुछ कहता है संसार उसे न देखने और न समझ सकने के कारण मिथ्या कह सकता है। इसी कारण लोग कल्पना को "गप्प" कहते हैं। सच पूछा जाए तो कल्पना सत्य के दर्शन कराने को ले जाने वाले पंख हैं।

कल्पना कवि की केवल आँख ही नहीं, उसे कान का काम भी देती है। विहान की विहग बालाओं के गीत, सन्ध्या का संगीत, सरिता का कलकल गान, झरनों का झर झर स्वर जिस अनन्त का सन्देश लाता है, कवि कल्पना के कानों से तुरन्त उसे सुन लेता है। लाखों आदमी प्रकृति को देखते हैं, परन्तु उसके गीतों को नहीं सुन पाते, सुन भी पाते हैं तो समझ नहीं पाते, प्रकृति का सौन्दर्य नीरव स्वर में जो कुछ गाता है वह एक अमर रागिनी है, जिसे कवि सुनता है और छन्दों में गूँथता है।

उसके गीत अटपटे से लगते हैं। दुनिया उसे मूर्ख कहती है। सच पूछा जाय तो समझ की कमी उन लोगों में ही अधिक है जो कवि को मूर्ख कह उठते हैं। कवि की कल्पना स्वाभाविकता का सरस संगीत है। कवि की कल्पना मादकता का रूप है। कल्पना 'सुन्दर' का सच्चा चित्र है। कल्पना 'सत्य है, हृदय की अनुभूति, बिना कल्पना की सहायता के कोई भावना साफ़ साफ व्यक्त नहीं हो सकती।

मानव हृदय की वेदना प्रेम लोक की पीड़ापूर्ण कहानी, अनन्त का रहस्य मय स्वरूप, प्रियतम का मादक प्यार का आज तक किसी भी महा कवि द्वारा ठीक ठीक वर्णन नहीं हुआ। उसकी कल्पना जितनी ऊँची उड़ सकी, उसने उतना ही अधिक रहस्य लोगों के सामने प्रकट किया। उसने जितना देखा उसका वैसा ही वर्णन किया। रहस्यमय के रहस्य छाया लोक के उपवन के प्रत्येक सुमन, सौरभ, कण कण का सच्चा वर्णन करने का प्रयत्न छायावादी किया करता है। जो बात मानव हृदय में बार बार उठती है, लेकिन अव्यक्त रह जाती है, उसका वर्णन कवि सुन्दर शब्दों में कर देता है। जिसका प्रेम जितना ही गहरा है वह अपने प्रियतम की खोज में उतना ही परिश्रम करेगा, उसकी कल्पना उतनी ही ऊंची उड़ेगी। उसकी कविता उतनी ही गहरी होगी।

## आधुनिक कविता में करुणरस का आधिक्य

वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान

कुछ लोगों को हमारे वर्तमान कविता साहित्य की विकल बांसुरी से

बड़ी घबराहट हो रही है, वे इसे घातक समझ रहे हैं। साथ ही अस्वाभाविक भी। कहते हैं कि यातना हाट-बाजार में रखने की चीज नहीं, वह हृदय में छिपा कर रखने की वस्तु है। सच्चे कवि को रोना नहीं चाहिये, परन्तु आज तक कोई ऐसा महाकवि नहीं हुआ, जिसने अपने जीवन में एक बूंद भी आँसू न गिराया हो। यह हृदय की सात्विक दुर्बलता है। कवि अपने होश में रह कर कभी नहीं रोता। बेहोशी में ही रोता है। भला यह कौन कह सकता है कि कोई बेहोशी में अनमोल हीरों की दूकान लगा कर बैठेगा। कवि दूकान नहीं लगाता, उनका मूल्य नहीं लेता। लोग उसकी आँखों के आँसुओं को चुरा ले जाते हैं। जो लोग आँसुओं की दूकान लगा कर बैठते हैं, वे शायद आँसू नहीं दे सकते। ये आँसू सच्चे मोती नहीं हैं, मोम के मोती अथवा पानी की बून्दें हैं। संसार उनको परख लेगा, अधिक दिन तक यह धोखा चल न सकेगा। हमारे कवियों में किन किन के आँसू छल हैं, यह भविष्य अपने आप बतला देगा। परन्तु यह कह देना कि रोना अस्वाभाविक है, अच्छा नहीं है, निन्दनीय है, यह हृदय के एक सुकुमार भाव का अपमान है। कवियों का हृदय कोमल और पावन होता है। हृदय की कोमलता निर्बलता नहीं है वरन् यह वह बल है जो हृदय हृदय में प्रेम का सम्बन्ध स्थापित करता है। करुणा वह गंगा है जिसमें स्नान करके हृदय की सारी कालिमा धुल जाती है। अतएव आजकल के नवयुवक कवियों को रोते देख कर अधिक चिन्ता नहीं करनी चाहिए। जनता की रुचि देख कर ही ये लोग रो रहे हैं, यह कहना ठीक नहीं है। वह जनता को अपने घाव दिखाने

नहीं जाते। वरन् जो लोग स्वय दु खी हैं, उनके पास जाते हैं। यह स्वाभाविक बात है कि दो दु खित हृदय जब एक दूसरे की बात सुनते हैं तो दोनों को शान्ति मिलती है। इस लिए यह रुदन निन्दनीय नहीं है। हाँ जो वेदना का अनुभव नहीं करते और रोने का स्वाग भरते ह उनका छल अधिक दिन नहीं चल सकता।

कविता ससार का हृदय है, कवि का हृदय स्वय एक विश्व है। जिस प्रकार ससार में दु ख सुख, वेदना आनन्द, उदासी-उत्साह, शूल फूल शिशिर वसन्त अनेक परस्पर विरोधी वस्तुए मिलती हैं, उसी प्रकार कविता में आह और वाह दोनों ही मिलेंगे। इस स्वाभाविकता को कोई भी दूर नहीं कर सकता। कवि प्रेमी है, प्रियतम नहीं, उसका हृदय विश्व है विश्वपति नहीं, उसकी वीणा प्रेम की बाँसुरी है, हँसी मजाक और आनन्द की सारगी नहीं, कवि हृदय वाला है हृदय हीन नहीं, सौन्दर्योपासक है, सौन्दर्य निन्दक नहीं; वह हँसता है, रोता भी है।

कवि हृदय के पारखियों को अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि विषाद और करुणा, मानव हृदय के स्वाभाविक गुण हैं। कुछ लोग प्रेम को शान्ति की खान बतलाते हैं, कुछ लोग वेदना की जड़। कुछ लोग कहते हैं प्रेम में आनन्द है आकुलता नहीं। कोई कहता है प्रेम के आनन्द में वेदना है, वेदना में आनन्द है। यह एक ऐसी उलझन है जिसको सुलझाने वाला कोई पैदा नहीं हुआ। दुनिया में न तो मिलन ही सदैव सभव है न विच्छेद, न आलिंगन न विसर्जन, न प्यार, न तिरस्कार, न उलाहना न प्यार। जिस समय हृदय की भाषा में, उन्माद की परिभाषा

में अतृप्ति की नाप से नापते हैं तो हमें किसी भी दशा में पूर्णता प्राप्त नहीं होती। न तो हृदय अपने हृदय धन को पाकर संतोष करता है, और न खोकर चाहता है और कर सकता है उतना रोष। मिलन में भी विरह का अनुभव होता है। हम जो चाहते हैं वह पा लेते हैं पर फिर भी हमें संतोष नहीं होता शान्ति नहीं होती, पाए हुए को खोने का डर अथवा और पाने की इच्छा हमारे साथ लगी रहती है। यही कारण है कि हमारा उपहार हमें अधूरा ही दीखता है। हमारी मनुहार हमें सदा सहमी सहमी सी प्रतीत होती है। हमारे उद्‌गार सदा लजाते से रहते हैं। हम जो पाते हैं उसे कृपण के धन की भाँति हृदय में छिपा कर रखते हैं फिर भी हमें अधिक की इच्छा रहती है। हम यह भी जानते हैं कि जो कुछ उसके पास था उसने हमें दे दिया। फिर भी जी नहीं मानता। यही तो अतृप्ति का उन्माद है और अतृप्ति के कारण विषाद हमारे हृदय में अपना राज्य स्थापित कर लेता है।

इसी अतृप्ति को और इससे पैदा होने वाली बेचैनी और उन्माद को उर्दू के प्रख्यात गल्पकार श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने अपनी एक छोटी सी गल्प में दर्शाया है। शीर्षक है, अतृप्ति लिखते हैं—

"जब पतझड़ का राज्य था और बेलों के गहने वायु में छिपे हुए अज्ञात निर्दय डाकुओं ने लूट लिए थे। जब वृक्ष अपने नंगेपन को, अपनी कंगाली को हसरत भरी आँखों से ताक रहे थे, और जब वाटिकाओं में पागल बयार को सुगन्धि के बदले पौधों के उत्तप्त निश्वास मिलते थे, मुझे 'रूप' और 'प्रेम' किसी की तलाश में भटकते हुए नजर आए।

उनके बाल बेपरवाही के जगत में बिखरे हुए थे चेहरे जर्द थे, अधर शुष्क थे और उनकी आँखों की मस्ती अस्त हो चुकी थी।

मैं ने उन्हें रोक लिया और पूछा, तुम्हें किस वस्तु की खोज है।

"वसन्त की" उन्होंने उत्तर दिया और फिर अपनी खोज में व्यस्त हो गए।

*   *   *

जब वसन्त की हुकूमत थी और लताएँ, पुष्प आभूषणों से आवृत, भूले भूल रही थीं, जब वृक्ष अपनी नयनाभिराम वेष-भूषा को देख कर गर्व से फूले न समाते थे, जब वाटिकाओं में प्रमत्त बयार जी भर कर सुगन्धि से अपनी झोली भर रहा था, मुझे रूप और प्रेम फिर दिखाई दिए।

उनके केश सुन्दरता से गुँथे हुए थे, मुख अरुणि उषा की भाँति लाल थे, अधरों से सुधा टपकी पड़ती थी और आँखों में सहस्रों मदिरालय छिपे हुए थे। पर वह अब भी किसी की खोज में भटक रहे थे।

मैंने उन्हें रोक लिया और पूछा अब तुम्हें किस चीज की तलाश है।

"अनन्त वसन्त की" पल भर रुक कर उन्होंने उत्तर दिया और अपनी पागल खोज में लग गए।

हाँ, तो मैं कहता हूँ कि अतृप्ति का यह उन्माद और इस उन्माद के कारण पैदा होने वाला विषाद और अशान्ति हमारे लिए चिन्तनीय नहीं है, निन्दनीय नहीं है।

जो हमारे पास है, उसे हम नित्य खोजते हैं। हमें ऐसा प्रतीत होता

है कि वह हमें मिल कर भी नहीं मिला। हम आकाश की ओर देखते हैं वह चमकता है—फिर भी उसे किसी दूसरे रूप में देखना चाहते हैं। उसके उस रूप की खोज करते हैं। सदा ही उसे नये नये रूपों में देखते हैं, लेकिन हमारा अभिलषित रूप नहीं मिलता। हृदय टटोलते हैं, वह वहाँ भी बोलता है। लेकिन उसके स्वर में ममता की मिठास कुछ अधिक चाहते हैं। यही अतृप्ति है। प्रेम और अतृप्ति का अमर संयोग है। भगवान ने यह शरीर ऐसा बन्दीगृह बनाया है, जिसकी खिड़की से हम अपने प्रियतम को देखते हैं, लेकिन उसे पा नहीं सकते। जिस दिवस इस बन्दीगृह से छुटकारा मिलता है, फिर किसी दूसरे कारागार में डाल दिए जाते हैं। जब तक कवि शरीर में है, जीवित है, वह अतृप्त रहेगा। वह करुण रागिणी छेड़ना नहीं छोड़ सकता।

आँखें क्या छोड़ेंगी करना अपनी करुणा का शृंगार
हृदय महा सरिता सा कवि का रोक सकेगा क्या संसार ?

अतृप्ति कवि का जीवन संगीत है। कोई प्रेम करके शान्ति चाहे तो मनुष्य जीवन प्रेम और शान्ति यह तीनों चीजें साथ नहीं रह सकतीं। इन में दो चीजें साथ रह सकती हैं, तीसरी नहीं। प्रेम का सौन्दर्य वेदना में चमकता है। प्रेम की पवित्रता हृदय की ज्वाला से बनती है। त्याग की आग में अनुराग का रूप अपनी सच्ची अवस्था में दिखाई देता है। जिस समय हमारी अभिलाषाओं की राख हमारे चरणों के पास पड़ी दिखाई देती है उस समय भी प्रेम के वेग का न रुकना यही प्रेम की शोभा है। जिस समय हम वेदना से बेहोश हो जाते हैं, उस समय हृदय

जो कुछ कहता है वही सच्ची कविता है । उसे समझने के लिए उसी बेहोशी तक पहुँचने की आवश्यकता है। हमारी बेहोशी की नीरव भाषा में जो अस्फुट, निस्वर उद्गार निकलते हैं, यदि हम उन्हें चित्रित कर सकें तो यही कला की पूर्णता है। इस पूर्णता तक संसार का कोई भी कवि नहीं पहुँचा है। नशे के उतार में लिखी हुई कविताएँ पीड़ा से उतनी तर नहीं होती, जितनी कि उन्हें होनी चाहिए। जिसकी एक ही तान से, पाठक के, श्रोता के हृदय की समस्त वेदना जाग उठे वह रो पड़े और रोने के बाद उसका हृदय हलका हो जाए। अधूरी पीड़ा से भरी कविताएँ पाठक को आकुल तो कुछ कुछ कर देती हैं परन्तु रुला नहीं पातीं। इसी कमी को पूरा करना चाहिए न कि हमारे साहित्य से करुणा का बहिष्कार। यदि कविता से करुण रस निकाल दें तो उसकी सारी कोमलता, सारी मिठास दूर हो जाएगी। पीड़ा को मीठी बनाने का प्रयत्न करना चाहिए नकि उसे खदेड़ने का व्यर्थ प्रयास।

इस समय मानव-हृदय की जो करुण दशा है, उसे देखते हुए किस का हृदय हँस सकता है ? हमारे कवि भी अपार उलझनों में फँसे हुए हैं, ऐसे समय में उनके गीतों में आनन्द की रागिनियाँ ढूढना अस्वाभाविक है। अपनी वासनाओं पर अधिकार रखने का अर्थ यह नहीं है, कि हृदय की स्वाभाविक स्थिति को छुपा कर, अन्तर की आग को बरबस दबा कर, एक कृत्रिम शान्ति की धारा बहा दें। यह प्रयास असफल होगा इस से न केवल, कवि को ही शान्ति न मिलेगी, बल्कि विश्व को भी धोका होगा। साहित्य को स्वाभाविकता की ओर जाने दो। यही

कला है। जिनके हृदय में आनन्द है, वे आनन्द की रागिनियाँ गाएँ; जिनके हृदय में विषाद है वह करुण गान गाएँ।

जग के कण कण से बहता है कोई करुणा का सगीत
कुछ ऐसा लगता है मानो जग ही है करुणा का गीत
सब ही सौरभ नीड़ से उड़ कर होते व्यथा गगन में लीन
सब का अतस्तल दिखता है किसी वेदना में तल्लीन

मैंने ऊपर जो लिखा है, "मनुष्य जीवन प्रेम और शान्ति ये तीनों चीजें साथ नहीं रह सकतीं इन में से कोई दो चीजें साथ रह सकती हैं", कोई कोई हृदय इसे मेरा भ्रम समझ सकता है।

विनिमय नहीं किन्तु लय ही है
सकल साधनाओं का सार

इस सिद्धान्त को मानने वाले जब तक अपने प्रियतम से अलग तरस रहे हैं क्या वे पूर्ण शान्ति पा सकते हैं। इस शरीर के बन्धन को दूर कर, इस कैदखाने से छूट कर अपने प्यारे में मिल कर ही पूर्णता प्राप्त होती है, जब तक यह पूर्णता नहीं मिलती, तब तक आत्मा अतृप्त है और अतृप्ति अशांति को निमंत्रण देती है।

तुम से मिल कर तो ऐ प्यारे,
दूनी पीड़ा बढ़ जाती!
हाँ, यदि तुम में मिल पाता,
तो यह व्याकुलता मिट पाती!
तुम औ मैं जब तक दो दो हैं,

तब तक बुझती प्यास नहीं।
प्रेमी के एकान्त प्रेम को,
दो पर है विश्वास नहीं।

प्रेम का वेग द्वैत भाव को सहन नहीं करता। वह दो की दीवार तोड़ डालना चाहता है। यही कारण है कि प्रेम, जीवन और शान्ति एक साथ नहीं रह सकते। हमें कैसी भी सुन्दर प्राप्ति हो जब तक हम अपना अस्तित्व मिटा ही नहीं देते तव तक दूसरी प्राप्ति के लिए लालायित होते रहते हैं। आत्मा और परमात्मा दोनों अलग अलग दो शरीर में, दो कैदखानों में नहीं रहना चाहते। वह इस कृत्रिम दीवार को तोड़ डालने को व्याकुल हो जाते हैं। यही व्याकुलता अशान्ति है। जो लोग अशान्ति का सम्बन्ध केवल विलास के ससार में रखना चाहते हैं क्या वे अशाति को ठीक ठीक समझ पाए हैं, अशान्ति कोई बुरी चीज नहीं, वह हमें पूर्णता की ओर ले जाती है। वह हमारी पूर्णता के लिए अपना नाश कर लेती है। अशान्ति के बराबर उपकारी प्रवृत्ति क्या कोई दूसरी है? अतएव, जिन कवियों की तानों में व्याकुलता है, अतृप्ति है, अशान्ति है, पूर्णता प्राप्त करने की प्यास है, वे तानें मानव हृदय का स्वाभाविक और सुन्दर चित्रण हैं, वे घातक नहीं। कवि के हृदय की अशान्ति दूसरे पीड़ित लोगों को आश्वासन ही देगी, उन्हें सतावेगी नहीं। जिन्होंने, अशान्ति की मंगलमयी मूर्ति का महत्व पहचाना है, वे कभी इसकी निन्दा नहीं करेंगे। स्वाभाविकता को छोड़ कर कोई ऐसी रचना नहीं दे सकता जो सारे ससार के हृदय में समान अधिकार पावे। पतझड़ जैसे वसन्त की

जननी है, वैसे ही अशान्ति शान्ति के दर्शन कराने वाली है। जो साहित्य में केवल शान्ति को ही अथवा अशान्ति को ही स्थान देना चाहते हैं, उनकी रचनाएँ सदा अधूरी रही हैं। वे न संसार को शान्त ही कर सकेंगे, न पूर्णता प्राप्त करने के लिए अग्रसर।

## अपनी बात

इस पुस्तक में मैंने आधुनिक युग की कविताओं का परिचय मात्र कराया है। आधुनिक युग की कविता का इतिहास लिखने का मेरा उद्देश्य नहीं है। अतः जिन कवियों को इस पुस्तक में स्थान नहीं मिला उन्हें कोई शिकायत न होनी चाहिए। इस युग के प्रारम्भ में अनेक कवियों ने बहुत सुन्दर रचनाएँ की थीं, पर अब मानों उनके प्राण सो गए हैं। गुलाब रत्न बाजपेयी, जनार्दन झा द्विज, रामनाथ 'सुमन', रमाशंकर शुक्ल 'हृदय', लक्ष्मीनारायण मिश्र, आदि को आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास लिखते समय भूला नहीं जा सकता। फ़िलहाल ये कवि गण सुप्त प्राय हैं और मैंने इस संग्रह में यदि इनमें से किसी को छोड़ दिया है तो उनके पुनर्जागरण की प्रतीक्षा में ही। निकट भविष्य में मेरा विचार आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास लिखने का है। उस समय सभी दृष्टियों से पुस्तक को विस्तृत और प्रामाणिक बनाने का प्रयत्न करूंगा। इस समय तो पाठक मेरी त्रुटियों को क्षमा कर दें।

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

# भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

[ जन्म संवत् १६०७—मृत्यु संवत् १६४२ ]

भारतेन्दु प्राचीन और नवीन कविता धारा के 'लिंक' अथवा दोनों प्रकार की कविता-दिशाओं की सन्धि कहे जा सकते हैं। ये एक प्रकार से नवीन कविता धारा के मुखबन्ध हैं। इनके काव्य में शृंगार के साथ साथ अन्य रसों का भी यथेष्ट मात्रा में परिपाक हुआ है। भावों, कल्पनाओं एवं अनुभूतियों को नया योग प्राप्त हुआ है। प्राचीन विचारों को नवीन उपमाओं, रूपकों और उत्प्रेक्षाओं का परिच्छद प्राप्त हुआ है। इनकी भाषा में खड़ी बोली और ब्रजभाषा का सामंजस्य दिखाई देता है। इनकी कविता शृंगार के साथ जातीयता, सामाजिक विचार स्वातन्त्र्य, देशभक्ति आदि सामयिक रंगों में डूब कर निकली है। इनकी कविता में प्रकृति सौन्दर्य तो अपूर्व ही है। प्रकृति-सौन्दर्य की कुछ कवितायें तो अब तक नवीन हैं।

इन्होंने लगभग अठाईस छोटे बड़े काव्य, छै स्तोत्र, उन्नीस परिहास, सत्ताइस ऐतिहासिक ग्रन्थ, बीस नाटक और आठ उपन्यास तथा आख्यायिकाऐं आदि लिखकर हिन्दी भाषा को नये रूप में अनुरित किया। इसी लिये ये आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता कहे जाते हैं।

---

## प्रकृति वर्णन

### ( १ )

तरनि-तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहुँ सुहाए॥
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा॥
मनु आतप, वारन तीर को सिमिटि सबै छाए रहत।
कै हरि सेवा हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत॥ १॥

कहुँ तीर पर अमल कमल सोभित बहु भाँतिन।
कहुँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन॥
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत निज सोभा।
कै उमगे पिय प्रिया प्रेम के अनगिन गोभा॥
कैकरि के कर बहु पीय को टेरत निज ढिंग सोहई।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई॥ २॥

कै पिय पद उपमान जानि एहि निज उर धारत।
कै मुख करि बहु भृङ्गन मिस अस्तुति उच्चारत॥

कै ब्रज तियगन बदन कमल की झलकत झाईं ।
कै ब्रज हरि पद-परस-हेत कमला बहु आईं ॥
कै सात्विक अरु अनुराग दोउ ब्रज मण्डल बगरे फिरत ।
कै जानि लच्छमी-भौन यहि करि सतधा निज जलधरत ॥ ३ ॥

तिन पै जेहि छिन चन्द जोति राका निसि आवति ।
जल में मिलि कै नभ अवनी लौं तान तनावति ॥
होत मुकुर मय सबै तबै उज्जल इक ओभा ।
तन मन नैन जुड़ात देखि सुन्दर सो सोभा ॥
सो को कवि जो छबि कहि सकै ताछन जमुना नीर की ।
मिलि अवनि और अम्बर रहत छबि इक सी नभ तीर की ॥ ४ ॥

परत चन्द्र प्रतिबिम्ब कहूँ जल मधि चमकायो ।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो ॥
मनु हरि दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो ।
कै तरंग कर मुकुर लिए सोभित छबि छायो ॥
कै रास रमन में हरि मुकुट-आभा जल दिखरात है ।
कै जल-उर हरि मूरति बसत वा प्रतिबिम्ब लखात है ॥ ५ ॥

कबहुँ होत सत चन्द कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत ।
पवन गवन बस बिम्ब रूप जल में बहु साजत ॥
मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै ।
कर कै तरंग की डोर हिंडोरन करत कलोलै ॥

कञ्ज घाल गुड़ी नभ में उड़ी सोहत इत उत धावती।
कै अवगाहत डोलत कोऊ व्रजरमनी जल आवती॥ ६॥

मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अविकल॥
कै कालिन्दी नीर तरङ्ग जितो उपजावत।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत॥
कै बहुत रजत चकई चलत कै फुहार जल उच्छरत।
कै निसिपति मल्ल अनेक विधि उठि बैठत कसरत करत॥ ७॥

कूजत कहुँ कल-हंस कहूँ मज्जत पारावत।
कहुँ कारण्डव उड़त कहूँ जलकुक्कर धावत॥
चक्रवाक कहुँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत।
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि गावत॥
कहुँ तट पर नाचत मोर बहु रोर विविध पच्छी करत।
जल पान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत॥ ८॥

कहूँ बालुका विमल सकल कोमल बहु छाई।
उज्जल झलकत रजत सिढ़ी मनु सरस सुहाई॥
पिय के आगम हेत पाँवड़े मनहुँ बिछाये।
रत्न रासि करि चूर कूल में मनु बगराये॥
मनु मुक्त माँग सोभित भरी श्याम नीर चिकुरन परसि।
सतगुन छायो तीर में व्रजनिवास लखि हिय हरसि॥ ६॥

## देशदशा

### ( २ )

जहाँ विसेसर सोमनाथ माधव के मन्दर।
तहाँ महजद बन गई होत अब अल्ला अकबर॥
जहँ भूसी उज्जैन अवध कनौज रहे वर।
तहँ अब रोवत सिवा चहुँ दिसि लखियत खँडहर॥
जहाँ धन विद्या बरसत रही सदा अबै वाही ठहर।
बरसत सब ही विधि बेबसी अब तो चेतौ बीरवर॥

कहँ गए विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर।
चन्द्रगुप्त चाणक्य कहाँ नासे करि के थिर॥
कहँ छत्री सब मेर विनासि सब गए किते गिर।
कहाँ राज को तौन साज जेहि जानत है चिर॥
कहँ दुर्ग सैन धन बल गयो, धूरहि धूरि दिखात जग।
उठि अजौं न मेरे बरसगन, रच्छहिं अपनो आर्य मग॥

### ( ३ )

जागो जागो रे भाई।
सोअत निसि बैस गँवाई। जागो जागो रे भाई॥
निसि की कौन कहै दिन बीत्यो काल राति चल आई॥
देख परत नहिं हित अनहित कछु परे बैरि बस आई।
निज उद्धार पथ नहिं सूझत सीस धुनत पछिताई

अबहूँ चेति पकरि राखौ किन जो कछु बची बड़ाई।
फिर पछताए कछु नहिं ह्वै है रहि जैहौ मुँह बाई॥

( ४ )

सब भाँति दैव प्रतिकूल होय एहि नासा।
अब तजौ बीरवर भारत की सब आसा॥ ध्रुव॥
अब सुख सूरज को उदय नहिं इत ह्वै है।
सो दिन फिर इत अब सपनेहु नहिं ऐहै॥
स्वाधीनपनो बल धीरज सबै नसैहै।
मंगलमय भारत भुव मसान ह्वै जैहै॥
दुख ही दुख करि है चारहुँ ओर प्रकासा।
अब तजहु बीरवर भारत की सब आसा॥ १॥

इत कलह बिरोध सबन के हिय घर करि है।
मूरखता को तम चारों ओर पसरि है॥
बीरता एकता ममता दूर सिधरि है।
तजि उद्यम सब ही दासवृत्ति अनुसरि है॥
ह्वै जैहैं चारहु बरन शूद्र बनि दासा।
अब तजहु बीरवर भारत की सब आसा॥ २॥

ह्वै हैं इत के सब भूत पिसाच उपासी।
कोऊ बनि जैहैं आपहु स्वयं प्रकासी॥

नसि जैहै सिगरे सत्य धर्म अविनासी।
तज हरि सो है है विमुख भारत भुव वासी॥
तजि सुपथ सवहि जन करिहैं कुपथ विलासा।
अब तजहु वीरवर भारत की सब आसा॥ ३॥

अपनी वस्तुन कहँ लखिहैं सबहि पराई।
निज चाल छोड़ि गहि हैं औरन की धाई॥
तुरकन हित करिहैं हिन्दू संग लराई।
यवनन के चरनहि रहिहै सीस चढ़ाई॥
तजि निज कुल करिहैं नीचन संग निवासा।
अब तजहु वीरवर भारत की सब आसा॥ ४॥

रहे हमहुँ कबहुँ स्वाधीन आर्य बन धारी।
यह दैहैं जिय सों सब ही बात बिसारी॥
हरि विमुख धरम बिनु धन बल हीन दुखारी।
आलसी मन्द तन छीन छुधित संसारी॥
सुख सों सहिहैं सिर यवन पादुका त्रासा।
अब तजहु वीरवर भारत की सब आसा॥ ५॥

( ५ )

जग में पतिव्रत सम नहिं आन।
नारि हेतु कोऊ धर्म न दूजो जग में यासु समान॥
अनुसूया सीता सावित्री इनके चरित प्रमान।

चिउँटिहु पदतल दबै डसत है तुच्छ जतुं इक।
ये प्रतच्छ अरि इनहिं उपेछे जौन ताहि धिक॥
धिक तिन कहँ जो आर्य होइ जवनन को चाहैं।
धिक तिन कहँ जे इनसों कछु सम्बन्ध निबाहैं॥
उठहु बीर तलवार खींचि मारहु घन संगर।
लोह लेखनी लिखहु आर्य बल जवन हृदय पर॥
मारू बाजे बजे कहौ धौंसा घहराहीं।
उड़हिं पताका सत्रु हृदय लखि लखि थहराहीं॥
चारन बोलहिं आर्य सुजस बन्दीगुन गावैं।
छुटहिं तोप घनघोर सबै बन्दूक चलावैं॥
चमकहिं असि भाले दमकहिं ठनकहिं तन बखतर।
हींसहि हय झनकहिं रथ गज चिक्करहिं समर थर॥
छनमहिं नासहिं आर्य नीच जवनन कहँ करि छय।
कहु सबै भारत जय भारत जय भारत जय॥

(७)

पहिले ही जाय मिले गुन में श्रवन फेर
रूप सुधा मधि कीनो नैन हूँ पयान है।
हँसनि नटनि चितवनि मुसकानि सुघराई
रसिकाई मिलि मति पय पान है।
मोहि मोहि मोहन मई री मन मेरो भयो
'हरिचन्द' भेद ना परत कछु जान है।

कान्ह भये प्रानमय प्रान भयो कान्हमय
हिय में न जान्यो परै कान्ह है कि प्रान है ॥

( ८ )

प्यारो पैये केवल प्रेम में ।
नहीं ज्ञान में नहीं ध्यान में नहिं कर्म कुल नेम में ॥
नहिं मन्दिर में नहिं पूजा में नहिं घंटा की घोर में ।
हरिचंद वह बँध्यौ डोलै एक प्रेम की डोर में ॥

---

# राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

[ जन्म सवत् १६२४ मृत्यु स० १६६४ ]

राय साहब बड़े देशभक्त, स्पष्टवादी, धर्मपरायण, हास्यप्रिय और विनोदी कवि थे। आपने ब्रज भाषा और खड़ी बोली दोनों में ही कविताएँ की हैं। ये प्रकृति सौन्दर्य और वेदान्त सम्बन्धी कविताएँ किया करते थे। आपकी कविताएँ कोमल शब्द विन्यास युक्त होती थीं। इन्होंने देशभक्ति और समाज सुधार की कविताएँ भी लिखी हैं। हिन्दी और सस्कृत दोनों प्रकार के छन्दों में रचनाएँ की हैं। तत्कालीन कवियों में आपका यथेष्ट सम्मान था। विचारों से आप थियासोफिस्ट थे इसलिये इनकी कविताओं में विश्व बन्धुत्व की भावनाओं के दर्शन भी होते हैं। आत्मा तथा परमात्मा के सम्बन्ध की कल्पनायें आपकी रचनाओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। आप लन्दन की रायल एशियाटिक सोसायटी के सदस्य भी थे। आपकी लिखी पुस्तकों में चन्द्रकला, भानुकुमार ( नाटक ) तथा धाराधर धावन आदि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

---

## वर्षा का आगमन

सुखद सीतल सुचि सुगन्धित पवन लागी बहन।
सलिल बरसन लगी बसुधा लगी सुषमा लहन॥
लहलही लहरान लागीं सुमन बेली मृदुल।
हरित कुसुमित लगे झूमन वृच्छ मंजुल विपुल॥ १॥

हरित मनि के रंग लागी भूमि मन को हरन।
लसति इन्द्र वधून अवली छटा मानिक बरन॥
विमल बगुलन पाँति मनहुँ विसाल मुक्तावली।
चन्द्रहास समान चमकति चञ्चला त्यों भली॥ २॥

नील नीरद सुभग सुरधनु बलित सोभा धाम।
लसत मनु बनमाल धारे ललित श्री घनश्याम॥
कूप कुण्ड गम्भीर सरवर नीर लाग्यो भरन।
नदी नद उफनान लागे लगे झरना झरन॥ ३॥

रटन दादुर त्रिविध लागे रुचन चातक बचन।
कूक धावत मुदित-कानन लगे केकी नचन॥
मेघ गर्जत मनहुँ पावस भूप को दल सकल।
विजय दुन्दभि हनत जग में छीनि ग्रीसम अमल॥ ४॥

---

भरत-वाक्य

लक्ष्मी दीजै लोक में मान दीजै,
विद्या दीजै सभ्य सन्तान दीजै।
हे हे स्वामी प्रार्थना कान कीजै,
कीजै कीजै देश कल्याण कीजै ॥ १ ॥

सुमति सुपद दीजै फूट को लोग त्यागैं।
कुमति हरन कीजै द्वेष के भाव भागैं॥
तजि कुसमय निद्रा चित्त सों चित्त जागे।
विषम कुपथ त्यागैं नीति के पंथ लागैं॥ २ ॥

तन्द्रा त्याग लहि कुशलता होंहि व्यापार नेमी।
सीखैं नीकी नव नव कला होंहि उद्योग प्रेमी॥
पूरे करे नियम विधि सों स्वस्थता के निवाहैं।
उत्कण्ठा सों दिवस निसि हूँ देश की वृद्धि चाहैं॥ ३ ॥

पावैं पूरी प्रतिष्ठा कविवर जग के शुद्ध साहित्य ज्ञानी।
होवैं आसीन ऊचे सुजन विदित जे देश सेवाभिमानी॥
पीड़ा दुर्भिक्ष वारी जुग जुग कबहूँ प्रान्त कोऊ न पावैं।
दीर्घायु लोग होवैं तिन ढिग कबहूँ रोग कोऊ न आवैं॥४॥

सत्संग सन्त सुर पूजन धेनु प्रेम,
श्रीराम कृष्ण चरितामृत पान नेम।

सौजन्य भाव गुरु सेवन आदि प्यारे
सम्पूर्ण शील शुभ पावहिं देश वारे ॥ ५ ॥
अन्याय को अङ्ग कहूँ रहै ना,
दुर्नीति की शंक कहूँ रहैना।
होवै सदा मोद विनोद कारी,
राजा प्रजा में अनुराग भारी ॥ ६ ॥
समस्त वर्णाश्रम धर्म मानैं,
सदा हि कर्तव्य प्रधान जानैं।
जती तपस्वी बुध वीर होवैं,
बली प्रतापी रणधीर होवैं ॥ ७ ॥

---

## मृत्युञ्जय

प्रतिनिधे खल काल कराल के।
कुटिल क्रूर भयानक पातकी ॥
अति विलक्षण है तव दुष्क्रिया।
अशुच मृत्यु अरे अधमाधम ॥ १ ॥

करत सैर हुते कल बाग की।
तुरँग बाग गहे कर रेशमी ॥
सुनि परे तिन की अब वारता।
चल बसे तजि के जग बाग सों ॥ २ ॥

पर दशा वह पूरन ज्ञान की।
स्थिर सदा रस एक रहै नहीं॥
न जब लौं मन को वस कीजिए।
तज सबै जड़जङ्गम वासना॥ ८॥

सुहृद संग सहोदर सुन्दरी।
सुखद सन्तति धाम वसुन्धरा॥
सुजस सम्पति की मन कामना।
सबन को वस बन्धन मानिए॥ ९॥

दनुज वंस भुजङ्गम देवता।
मनुज कुञ्जर भृङ्ग विहङ्गम॥
विपिन तुङ्ग तड़ाग तरङ्गिनी।
जलद वृन्द दिवाकर चन्द्रमा॥ १०॥

गगन मध्य धरातल मध्य में।
अरु रसातल में जितनों जितै॥
सकल सो जड़ जङ्गम जानिए।
असत पञ्च प्रपञ्च विरञ्चि को॥ ११॥

यदि लखात असार जहान है।
छुटत जो जग बन्धन ते हियो॥
उदित जो उर मुक्ति सुकामना।
करहु तौ तुम साधन ज्ञान को॥ १२॥

तिमिर नाश प्रकाश विना नहीं।
घन विलात न वात विना यथा॥
न वरखा विन जात निदाघ ज्यों।
मिटत काल नहीं विन ज्ञान के॥ १३॥

विलग वारिधि ते न तरङ्ग है।
पृथकता वरु मन्द विचारहीं॥
लहर अम्बुधि दोनहुँ अम्बु हैं।
जगत ब्रह्ममयी तिमि जानिए॥ १४॥

कनक के वरु कङ्कन किङ्किनी।
अमित आकृति के रचिये तऊ॥
कनक ते नहिं अन्य कछू तथा।
सकल ब्रह्ममयी जग जानिए॥ १५॥

पवन भासत नाहिं विना चले।
अरु चले यह भासन लागई॥
अचल चञ्चल है इक ही हवा।
पृथक मूढ़ भलो समझौ करै॥ १६॥

यहि प्रकार अचञ्चल ब्रह्म में।
स्फुरण चञ्चलता सम जानिए॥
जगत भासन लागत है सही।
पृथक तौन नहीं पर ब्रह्म सों॥ १७॥

चींटी, मक्खी शहद की, सभी खोज कर अन्न।
करते है लघु जन्तु तक, निज गृह को सम्पन्न॥
निज गृह को सम्पन्न करो स्वच्छन्द मनुष्यो!
तजो तजो आलस्य अरे मतिमन्द मनुष्यो!
चेत न अब तक हुआ मुसीबत इतनी चक्खी।
भारत की सन्तान बने हो चींटी, मक्खी॥ ३॥

---

माता के समान पर पत्नी विचारी नहीं,
रहे सदा पर धन लेन ही के ध्यानन में।
गुरु जन पूजा नहीं कीन्हीं शुचि भावन सी,
गींधे रहे नाना विधि विषय विधानन में॥
आयुस गँवाई सबै स्वारथ सँवारन में,
खोज्यो परमारथ न वेदन पुरानन में।
जिनसों बनी न कुछ करत मकानन में,
तिनसों बनेगी करतूत कौन कानन में॥

---

पूरन सप्रेम जो न लेत मुख राम नाम,
टीका अभिराम है निकाम तासु आनन में।
उर में नहीं जो हरि मूरति विराजी मंजु,
कौन महिमा है कंठ मालन के दानन में॥

आसन को नेम विना वासना नमाये मिथ्या,
विन श्रुति ज्ञान होत मुद्रा वृथा कानन में।
चहिए सुप्रीति धर्म कर्म के विधानन में,
रहिए मकानन में चाहे घोर कानन में॥

शब्द-संयोजन में सुन्दरता सरसता स्वयं उछली सी पड़ती है। मधुर और सरस रचना में पाठक जी अपने समय के अनूठे कवि थे।

अब तक इनके जितने ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनके नाम ये हैं—आराध्य शोकांजलि, श्रीगोखले प्रशस्ति, एकान्तवासी योगी, ऊजड़ ग्राम, श्रान्त पथिक, काश्मीर सुषमा, मनोविनोद, श्रीगोखले गुणाष्टक, देहरादून, तिलस्माती मुँदरी, गोपिका गीत, भारत गीत।

---

सामाजिक सम्बन्ध उसी से खण्डित अपने पाते हैं॥
आवेगा एक समय जब कि सौभाग्य शून्य होकर यह देश।
वीरों का पितृ गेह विश विद्वानों का आवास अशेष॥
धन तृष्णा का घृणित एक सामान्य कुण्ड बन जावेगा।
नृपति, शूर, विद्वान आदि कोई भी मान नहिं पावेगा॥
स्वतन्त्रता का हो सकता है यह सब से बढ़कर उद्देश।
व्यक्ति व्यक्ति पर रहे भार शासन का शक्ति अनुसार अशेष॥

—"श्रान्त पथिक" से

( ५ )

## सुसंदेश

कहीं पै स्वर्गीय कोई बाला सुमञ्जु वीणा बजा रही है।
सुरों के सगीत की सी कैसी सुरीली गुञ्जार आ रही है॥
हरेक स्वर में नवीनता है, हरेक पद में प्रवीनता है।
निराली लय है औ लीनता है अलाप अद्भुत मिला रही है॥
अलक्ष्य पर्दों से गत सुनाती तरल तरानों से मन लुभाती।
अनूठे अटपट स्वरों में स्वर्गिक सुधा की धारा बहा रही है॥
कोई पुरन्दर की किङ्किरी है कि या किसी सुर की सुन्दरी है।
वियोग तप्ता सी भोग मुक्ता हृदय के उद्गार गा रही है॥
कभी नई तान प्रेममय है, कभी प्रकोपन कभी विनय है।
दया है दाक्षिण्य का उदय है अनेकों धानक बना रही है॥